यह एक दिन है

यह एक दिन है

प्रयाग शुक्ल

प्रकाशक
प्रकाशन सस्थान
वयू 22, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

प्रयाग शुक्ल
प्रथम सस्करण 1980
द्वितीय सस्करण 1980

आवरण हिम्मत शाह

मूल्य 15 00

मुद्रक
शब्दशिल्पी दिल्ली 110032

ज्योति के लिए

क्रम

यह एक दिन है

मचान

यहा से पहाडी ढलान है
और नीचे बीच की बस्ती और उससे भी नीचे
बहती नदी के बाद पहाड हैं बर्फ ढके ।
हम पहाडी सडक के किनारे बन शेड के
नीचे आकर बैठते है ठीक मचाननुमा है यह शेड ।
मचान कहते ही शिकार का ध्यान आता है
लेकिन जाहिर है कि यह जगह शिकार
के लिए नहीं है । जितनी दूरी तय कर सकती है
आखें यहा से करती हैं । पहाडो को बिना
स्पर्श किये हम छूते हैं आसमान के नीचे
टँगे रुई रुई बादलो के ढेर तक
पहुँच जाते हैं । नीचे एक ट्रक घरघराता है
जो दिखाई नही पडता । सीढीनुमा पहाडी खेतो
पर आखो के सहारे बहुत दर तक बैठकर
हम सुस्ताते हैं । मचान पर बैठकर हम और भी
बहुत कुछ ढूढना चाहते हैं जो जरूरी नही कि
दृश्य मे हो । धीरे धीरे हम कई रुँधी
हुई नलियो का ध्यान आता है ऐसी नलियो
का जिनके दोना सिरो पर पारदर्शी द्रव
झलकता हो लेकिन बीच म कुछ रुँधा
होने के कारण एक दूसरे को छू नही
सकता हो । विचित्र है हम कहते हैं । हम
कहा से कहाँ पहुँच गय बैठे बैठे । यह खामखयाली
नही है मचान उडने को तत्पर लगती है सहसा ।
हम नीचे से ऊपर तक हिल उठते है ।

हरी बेंच

पडा म लिपटी हैं लताएँ, धमनियो मे रक्त है
कभी उबलता कभी शात । अनेक टेढी मेढी पगडडिया हैं,
एक सीधी आत्मकथा स रहित दिन है
और कुछ अचरज से देखत हैं हम
कि हम है । वक्त काटने के लिए हम किसी
दूसरे की जीवनी से कुछ सिरे चुनत है
और बराबर सोचते हैं कि दूसरे के सिरे
हम से कुछ ज्यादा हैं । हम कही एक बेंच
को भी चुनते हैं जो हरी है, हरी है
उसके ऊपर की छत । लेकिन दिन की धूप
और रात के अँधेरे मे उनके रग एक मे
नही हैं न हाव भाव । हम बार बार
यहा लौटकर आते हैं जैसे कुछ भूल गय
हो । हम उस भूलने की याद करते हैं ।
थोडी देर याद पाते हैं कि सोचने
और याद करने के मकसद के न मालूम होने से
हम दोना ऊब गय हैं । हम यानी मैं और बेंच
हल्के अँधेरे मे एक घोडा आता है अचानक
और घास और सूखे पत्ता के बीच मुह
चलाता है । उसका आना एक राहत है ।
हम सहसा खत्म हो जाने वाली छुट्टियो
की याद करत हैं । और एक कौंध की
तरह दिखती है पहाडा की ओर मुह
किये हर मौसम म पडी वह बेंच
जिस पर आकर हम बठते थे ।

पहाड़

कुछ पेड़ पहाड़ों पर चढ़ते हैं,
कुछ उतर रहे हैं। कुछ इकट्ठा हैं एक जगह
न कहीं आते, न जाते हुए। पहाड़ों को हमारा आना
मालूम नहीं। हम अपने को लिये दिये
एक उतरती हुई पगडंडी पर बैठ जाते हैं।
देखते हुए बेहिसाब चीजों को
वे गयीं दो तितलियाँ उड़कर, वह चींटी एक पत्ती
पर चढ़ रही है, वे फूल हवा में हिलते हैं
वह पेड़ पत्तियाँ उतार कर खड़ा है निवसन
एक बहुत काला कौवा उड़ा जा रहा है,
धूप में चमकता। परछाइयाँ अनगिनत हैं।
हम थकने लगते हैं। चुपचाप बैठ रहने को बेताब।
पहाड़ ऐसा नहीं होने देते। रात की नींद के सपने
दिन में मँडराते हैं। टुकड़े बातचीत के। यादें।
उन्हें हम पहाड़ों को सौंप कर निश्चिंत नहीं हो सकते।
धीरे धीरे धूप गरमाती है सिवाय हवा के सब कुछ
स्थिर हो जाता है। अधलेटे आँखें खोलकर हम देखते
हैं पहाड़ों और आकाश का मिलना। सिगरेट
आधी जल चुकी है। भीतर कोई कहता है, 'चलो
अब चलें।' सहसा पहाड़ हामी भरते हैं। तीखी आवाज
करती हुई निकल जाती है एक चिड़िया
पहाड़ों को हमारा आना मालूम है।
हम सिर से पाँव तक भर उठते हैं,
न कहीं गयी चीजों से।

दिन

दिन कभी एक साथ नही लौटते
दिनो म दिन हैं
(और दिनो के पार दिन)
सडक पार करते हुए शाम को
वह किसी एक दिन का चेहरा था
जो पहचान मे नही आया। वह लौट नही रहा
था। हमी लौटे थे उस सडक स। दिन वही
खडे रहते है। सीढिया चढते हुए रात को
वे बचपन म अँधेरे मे खेले गये खेल हैं।
बडे होकर एक कुएँ से खीची गयी बाल्टिया हैं।
दिन समुद्र है। पहाड। दिन एक महक है
जो सदा नही बनी रहती। तमाम सडको म
चलता हुआ ट्रफिक चलत पैदल लोग, बद
होती दुकानें। दिनो ने बहुत से दिन देखे हैं।
रेलगाडियो की पटरियाँ। धौंकनी की तरह चलती
सासें। ठड के दिन छोट होते है, गर्मिया के
लवे। बारिश म केवल बारिश होती है, दिन
नही होते।
बहुत सी तस्वीरें है दिनो की।
दिनो का कोई अलबम नही।

पहाडो धूप

एक दुनिया थी जिसे हम भूलत जा रहे थे
पत्तियो का रग ठीक वही नही है जो तब लगा था
छना का लाल और सलेटी अब लाल और सलेटी है।
दश्य के बाहर की चीजें हैं ये गिनन को।
भीतर कुछ सुगबुगा रहा है उसे करवट लेत हुए
देख सकते है हम। मिट्टी की तह म दबी हुई
हजारहा चीजें है। पुरातत्ववेत्ताओ के तबू
कौंधत है एक लब इतिहास म। जीवन बहुत
लबा नही है हमारा लाखा चीजा से अछूता और
लाखो आवाजा के विस्फोटक अणुओ से भरा
हुआ। नीद मे डूबा हुआ आधा। पवतारोहियो के
किस्से सुने है हमने। अँधेरे मे जलती हुई लालटेनें
टाच बत्तियाँ जान किन स्मृतिया म मँडराती
है। दूर कही बारिश हो रही है—बादल
गडगडात हैं।
यह रात का वक्त नहा हम चौंककर कहते
हैं धूप का वक्त है यह। धूप जो अपनी चमक
से हम सुला भी दती है। सब कुछ दिखा कर साफ साफ
डाल आती हम एक खडड म।
जहा से वापस आना फिर एक
मुश्किल चढाई है।

मैं शात था

मैं शात था
सब बोल रहे थे
चिडिया पेड आसमान
घर सडकें।
मैं शात था।

मुक़ाम

हम कही दूर चले जात हैं। वापस आते फिर।
और उम जगह् का नाम मालूम नही।
आकाश छत नही है एक नीली गहराई भी
नही, वह फैला हुआ नीला है
जिसका कोई शरीर नही। 'मुक़ाम' 'सब उसी मुक़ाम
पर पहुँचते हैं * फैयाज न कहा। फिर एक थाप है
शरीर से कुछ ले जाती हुई। हम सब डूब जाते
हैं। अनेक बार मैंने अपने को डूबते हुए
देखा है। फिर वह शरीर वही शरीर नही रहता।

---

* तबला वादक फैयाज खाँ

खोयी हुई चीज

वह खोयी हुई चीज नहा मिलती
दिनो तक कितनी ही चीजो म उसकी
झलक आती है अँधेरे मे हम उससे मिलती जुलती
चीज को उठाकर तौलने भी लगते हैं।
घर मे रास्ते मे बरसो बाद भी कौंध जाती
है वह खोयी हुई चीज। और जब चीजो के
खोने के बारे मे बातें होती हैं,
वही याद आती है सबस अधिक।

रात को

रात को देर गये लौटते हैं हम
यह याद करत हुए नही कि
एक और दिन था जो चला गया
(वैसा लिखा जाता है कहानियो म)
बस लौटते हैं हम

अकेली सटक पर चलते चलते
अँधेरा घना हो उठता है
टीले के पेडो पर—हम अपने स
(और अपना मे) कुछ कह सुन रहे
होते हैं—
कभी चल रह होते है बस।

दिन

यह एक दिन है, तारीख नही।
अभी अभी बचा है उसका
शरीर बिछुडने से—दश्य स।
हवा म कापती है वह
साडी की लाल पाढ।
उस पड पर इकट्ठा है
चिडियाँ, स्मतिया म अधिक
चहचहाती।
(यह एक अत भी है)

पीली मुरझायी घास के बीच
वह खडा है फिर चल पडने को।
कही आकाश भी है जरूर।
किस किस से अलग।

दपण स अलग
एक चेहरा है जो पकड म
नही आता।
(लहूलुहान लथपथ—
सब अधूरे हैं शब्द)
गुजरता रहता है चीजा
के बीच से। दिन भर।

दिन

यह एक दिन है, तारीख नही।
अभी अभी बचा है उसका
शरीर निछुडन स—दश्य स।
हवा म कापती है वह
साडी की लाल पाढ।
उस पड पर इक्टठा हैं
चिडिया स्मतिया से अधिक
चहचहाती।
(यह एक अत भी है)

पीली मुरझायी घास के बीच
वह खडा है, फिर चल पडन को।
कही आकाश भी है जरूर।
किस किस से अलग।

दपण स अलग
एक चेहरा है जो पकड म
नही आता।
(लहूलुहान, नयपथ—
सब अधूरे हैं शब्द)
गुजरता रहता है चीजा
के बीच म। दिन भर।

पेड़ की बात

आँखें बंद रहती हैं उनके ऊपर एक हाथ रखे
हम सुनते लेटे रहते हैं आवाज़ें रविवार की।
हवा आती है, फड़फड़ाती कमरे में कागज़
एक अँधेरे के बीच से किस तरह उग आता
है इमली का पेड़।
उसके साथ की कच्ची सड़क में जा ही
रहे होते हैं हम कि आती है
बेटी उछलती 'हम दफ़्तर जा रहे हैं बंदर
का नाच
हटा कर हाथ आँखों के ऊपर से
हम मुस्कराते हैं आदतन
होठों तक आकर रह जाती है पेड़ की बात।

निशान

किसके निशान रहते है धरती पर ?
सोचा मैंने
गुजार दिन के बाद एक सारी शाम अकेले
दो चिडियाँ आयी उड कर
चली गयी।
उतरी रात।
बत्ती जला—मैंने पल्टी कुछ किताबें।
एक पेड देखा—अँधेरे म।
ऊँची सडक पर जाती हुई बस
दोस्त के कमरे म बितायी शाम
(वह वहा नही था)
कोई चिठठी नही छोडी।
उन सबकी याद की—जिनकी याद मैं ही
कर सकता था।
कुछ थे जो दुनिया मे नही थे।
कुछ थे जो मेरे पास नही थे।
एक चिठठी पढी—दुबारा तिबारा
जो रहेगी नही।
(कितनी चिठिठयाँ दुनिया की)
रहती कहा ?
खिडकी स झाका।
लौटा अँधेरे मे—
करता याद उन सब निशानो की
जिन्हे बचा रखना चाहता था मैं।

नानी

मेरी बेटी न नही देखा मेरी नानी को।
(नानी की कोई तस्वीर भी नही है मेरे पास)
मुझे भी अपनी नानी की धुधली सी याद है।
नानी गाँव के एक घर म रहती थी
(उजले आगन और अँधियारे कमरा के घर म)
नानी के गाँव म एक नहर थी।

नानी अपने एक बेटे के पास रहती थी। नहर म।
(छूटा जब गाव का घर)
बूढी नानी। एक छुट्टियो मे हम जब
गाडी पकडनी थी रात की—नानी
अपन सदूक को खोल कर
कुछ ढूँढ रही थी टटोलती—
नानी ने मुझे कोई चीज दी थी—
शायद हरे काने मे हो
गये कुछ पैसे
कुछ ठीक से याद नही
नानी ने कोई चीज दी तो थी जरूर!

नानी का चेहरा—वह तो और
भी याद नही।

नीद

एक बहुत बडी दुनिया है नीद
उसम असख्य सपन हैं कई जगल
कई समुद्र अथाह समय है उसम
उसी के किनारे एक दिन हम मिलते
हैं एक घुडसवार स
एक खोये हुए बच्चे से एक पत्ते मे
एक पेड से उसी के किनारे हम
मिलत हैं एक दिन दुनिया की खोयी हुई
किसी भी चीज से नदियो से धुधली तस्वीर से एक
जजर दीवार से एक झोके से हवा के जो
अलग है हवा स।

डाक टिकट चिठियाँ मशीनें वर्से रलें
आधी नीद मे हम दखत हैं एक स्टेशन

सुनते हैं कुछ आवाजें जो फिर खो जाती है
किसी की आधी नीद म पहुचने फिर
एक दिन

सोय मिलत पहाड वनस्पनिया चिडियाँ
(दिखती नही) सोय लिपट शरीर उघडा बदन
चेहरा (किसका था किसका था) हाथ
अतिम बस छोड जाती है जिन्ह किसी स्टाप पर
सडका का सन्नाटा अनुभव करत
पहुँचत हैं व भी इसी दुनिया म नीद की
जागती हुई नीद खिडकी का शीशा
सरसराता पड चलता अघड सोत नही हैं
जो सो नही पाते रहत हैं वे नीद की
दुनिया म चौकन्ने आशकित।

स्वाद

लौटकर आने वाली चीज है स्वाद
इसीलिए हम उसका इतजार
करते हैं।
पेड अपनी जगह खडे हैं
(हिलते हुए)
नामहीन कौवे उडते हैं अचानक
पहले से अलग
आँखें देखती हैं आकाश।
रग आँखो को याद हैं।

हम पूरी करते हैं दिनचर्या।
सहसा याद करते हुए अपने चलने को।
रात को, कभी ठीक सोने से पहले
कभी टूट जाय नींद तब,
हम कुछ अनुभव
करते हैं—शब्दो से परे।
पहचानते हैं फिर कि
शरीर करवटें लेता है
मन भूला नही है चलना—
और हम रुकी हुई घडी के बावजूद
अदाजा करते है समय का
रात मे।

जेब

मेरी भी एक जेब है।
पत्नी कहती है
रहती है खाली।
खाली जेब हर सुबह मिलती है खाली।
कोट की जेब हो या कमीज की।

पेड को चिंता नहीं है ठूठ की
चिडियाँ चहचहाती हैं
मैं जब एक पगडडी पर चला जा रहा होता हूँ
घास पर—पीली मुरझायी घास पर
धीरे धीरे माथ को तपा कर धूप
दिलाती है याद हजार चीजों की।
मैं हाथ डालता हूँ जेब में
खाली जेब। खाली। कोई बात नहीं।
मैं उसे धूप पर उलट दू
या बद रखू
कोई फर्क नहीं पडता।

खाली। जेब। खाली जेब की स्मृतियाँ।

पड

हम देखते हैं फूल।
लिखता है पेड भी कुछ धूप में
शब्द रिसते हैं रगा मे।

एक टहनी का कठ फूटता है
चिटिया।

भुरभुरी मिट्टी गीली मिट्टी
अचानक सुनती है कुछ
हम सुन नही पाते
अचरज से देखत उसे कुछ
सुनत हुए।
(हजार साला की स्मति)

कोशिश करत हम भी।
कोशिश है कविता।

जैसे कि अब

हवा चलती है पत्तियों की तरह सरसराता है कुछ मुभम,
लेकिन काफी नहीं है इतना, जानता हूँ।
दृश्य के बीच नहीं रहूँगा मैं किसी दिन।

हर बार कोशिश करता हूँ कह सकूँ
रखूँ अपने को हर चीज की आँखों के सामने।
लेकिन दिख जाता है थोड़े थोड़े दिनों के
बाद अपना ढकापन।

फिर से इच्छा होती है तितलियों फूलों, पत्तियों
तक के ऐन सामने खड़ा होऊँ।

याद के पीछे भागते हुए
बहुत कुछ दिखता है, डूब चुका।

क्या उसे लाऊँ उबार कर, बताऊँ वही म।
लग जाता हूँ छोटी मोटी चीजा म—
मसलन किसी पौधे को दना पानी
या केवल दखना सामन की
खाली पडी जगह। सुलगाता सिगरेट।
अभी नही होगी कविता। कविता नही होती इस तरह।
कील पर टँगी कमीज। भाकता बिस्तर बद ऊपर से।
कब से चलता रहा। क्या इकठ्ठा किया।
वैसे तो भर आ सकता है मन दख कर किसी भी
चीज को। सोचकर।
लेकिन जसे थकान और आधी नीद मे
शहर के दो कमरा के बीच पता नही
चलती, अपनी हालत ठीक ठीक।
बिखरी, बेतरतीब और रुँधी हुई चीजें भी
बढती है आगे।
अकेला दुख भी रसता ह मानो।
और कुछ न कह कर भी देखत रहना—
जैसे धूप मे गुजरते पगडडी स
देख लेना कुछ ऐसा, जो नही है वहा पर दिखा
हो मानो साफ साफ
एक चौखट म।

माना उठ कर बैठ जात हैं शब्द दौडते, होत स्थिर
और रहत हैं साथ लेकिन चुप
देखन समझने की कोशिश करते हुए
जस कि अब।

आखिरी शाम

हर गर्मिया की एक आखिरी शाम होती है
(सबकी अपनी अपनी)
जब हम किसी सीढ़ी पर चढ़ते हुए जस उसके
आखिरी सिरे तक पहुँचने लगते हैं—
या एक बिछे हुए मदान के किसी
कोने म पहुँच जाते है उसकी लबाई नापत।

वहाँ एक पेड होता है
(कभी कभी पानी भीगी घास)
और सिवाय उसके हम हर चीज स कितनी
दूर निकल जाते हैं।
हम अनुभव करत है कि अब चीजें ही

हम पहचान लें तो कितना अच्छा हो।
जानने समझने सोचने के जान पहचान
तरीकों को कोई उतरवान मगता है शरीर से
(या हम स्वयं हल्के हो लेना चाहते है)
गर्मियो की अपनी आखिरी शाम म।

(ये चिडियाँ वही नही है,
और न हमारा शरीर वह शरीर)
फिर भी बचैन होन लगते हैं
(हम जो निरस्त्र हो चुके हैं)
कि अभी फिर स लैस कर दिये जायेंगे,
हमम कहीं बहुत दूर भीतर पडी
खोयी जा चुकी किसी (भी) चीज म !

गर्मिया की अपनी आखिरी शाम म
कितनी दूर जाकर हम फिर लौट आते हैं—
अपने एक बेतरतीब हो चुके अल्बम
को मन ही मन पलटते।
(सोचते छुटकारा नही इससे,
इसमे जुड गया है कुछ और)
एक अपरिचित बस्ती मे प्रवेश करते
खेलते बच्चा बरामदो, खिडकियो पर चेहरो
परिवारो को देखते,
एक दीवार के साथ साथ चली आती
धूल भरी पत्तियो पर आखें गडाये
हम फिर लौट आते हैं—
अगली गर्मियो की आखिरी लबी शाम तक
के लिए।

और शाम

जैसे कई जन्मों के बाद।
पेड का वह तना
और शाम
शरीर में सब कुछ खुदा हुआ है।
फिर से लौट आना। पत्तियों का हिलना।

देख लेना अपने को उसी आईने में।
(जुड गया है बहुत कुछ चेहरे से परे)
मृत्युएँ और अनुपस्थित शरीर।
पाना उस ठंडी हवा के स्पर्श में
जर्रे जर्रे की बात।
तमाम भूली हुई चीजें।
कमीज के कालर या बाँह में से फिसलना
भूले हुए मन का—

चौकन्नी सदियां

धूप मे काफी देर तक बैठे रहने के बाद
मैंने मन ही मन कहा—चौकन्नी सदियां।
तार, कपडे, हिलते हुए हवा मे दृश्य।
धूप पिघलाती हुई तमाम आवाजो को—
कही धमाका भी हुआ, नही गुब्बार की तरह
फूल कर कुछ फूट गया।

वही नही जो लगातार बहता रहता है,
कुछ उछलता भी रहता है रह रह कर।
पिछली तमाम सदियो का हिसाब
कोई नही मागता।

छत मे सूखने के लिए डाली गयी चीजें।

ताल के ठडे जल से कुछ हटकर
खडहर की दीवार के सहारे
बठा हुआ मेरे बचपन के दोस्त के पिता
का पिता, बूढा बाबा।
कब मरा ?
कुछ सरकता हुआ आया और उसे सोख लिया धूप ने।
सदियो मे छिपा है सदियो का हिसाब।
क्या हुआ, हिल गया बठे बैठे मैं
कई बार—गुजर गयी कई रेलगाडियां।

हम

हम तसवीरें देखत हैं
हम घास पर बैठते हैं
हम किताब पढते हैं
खिडकी से बाहर झाक्त है

हम रात को जागते है
घडी देखते हैं
हम चिठठी लिखते हैं
सोचते है

पैदल चलते है घर लौटत है
प्यार करते हैं खेलते हैं
बच्चा म बहस करते हैं दोस्ता स

चुप रहते हैं
हम नहाते हैं खात हैं
थक्त है सुस्ताते है
कई वार—कई कई बार
मरने से वच जाते हैं।

हम अ-याय से लडते है
और नही लडते है
अपने मे रहते है
ग्रौर अपने म नही रहत
हम जानत है
और नही जानते है

हम पछताते हैं
और नही पछतात हैं
हम अपना अ-याय
और अपना प्रेम लिये
एक दिन दुनिया स
चले जाते हैं।

परिवार

शाम के बढते अँधेरे मे होने लगता है गुम
या कि आता है उभर—
अलग अलग छतो के नीचे।

चलता चला जाता है वह, धुध—
ठड से आँखो मे पानी।
कही से आकर उसे देख ले कोई
पेडो के पास अकेला।
क्या चला जाता है छोड कर वह रोज
अँधेरे मे, मिट्टी के बहुत पास।
नहीं, कोई गडा हुआ धन नही।
कौन उसे खोलेगा। पत्र नही।

तमाम दौडती सवारिया और बहुत सी बहसो से अलग,
ठीक तभी जब डूबने लगता है अँधेरा रात मे
तर आते है कुछ नाम। जिन्हे और कोई नही सुनता।
डाल लेता है वह कोट की जेबो मे हाथ।
अच्छा, फिर कल—

उभर आती अकेली राह,
वापस लौटने की।

एक शाम चला अपने शहर के स्टेशन स

चलत रहन के वाद अपनी ही दह जैस
दूर निकल जाती है
दिखती है जैस दिखती हैं आकृतियाँ
अचानक अँधेरा होन पर—'यही वही होगी

लिखूगा उपन्यास सोचा था।
जव तक कुछ लिखू—उभर आता है शाम का तालाव,
नात चमकता एक गध मे। मैंने देखा और
वह अव तक वह है—मेरे भीतर।
उसी शहर मे देखी मैंने वद भीड भरी गलिया
सवारिया के बीच फँसी हुई—कई वर्षो के बाद
ज्यो की त्यो।
कहना क्या चाहता था।

और भी दुपहरें हैं, शाम जसे बैठे हुए एक
सूने प्लेटफाम पर कर डाली मैंने कई पढी हुई
पुस्तको की समीक्षाएँ—
याद आयी कई फिल्म। टहलता रहा चुपचाप
न जाने किस किसके साथ।

हवा आती है

हवा आती है खुली हुई खिडकी स ।
पत्र की पक्तिया रचने लगती है
अपन अथ चित्र मन मे ।
घुलते है चित्र ।
अथ—

मन टिका नही रहता है वही ।
हवा बिखेरती है शरीर के, मन के पत्ते
या उ ह समेट कर ला देती है
कुछ झरे और कुछ हरे ।
हवा आती है और हवा के सुख के साथ
पत्ते बचपन स ही जुडे हुए है ।

मैं जानता हूँ कि यह हवा
कई पत्थरा म हाती हुई आती है
उ ह ज्या का त्यो जमा रहने दे कर
लेकिन लाती है कई अतल-स्पश ।
लहरो का लौटना ।
हवा आती है—
मृत्यु को सरल करने ।
और बताने कि वह पढ सकती ?
मेरा अनलिखा ।

दिनचर्या—1

बहुत दिनों से नहीं लिखी है
कोई कविता,
मन ही मन कहता हूँ,
दो चार भरी सड़कों को जोड़ने वाली
एक छोटी सी गली से गुजरते हुए।
वह पड़ और आगे सरकता जाता है।
चलता है साथ साथ एक घेरा, वृत्त
किसी रोशनी के गोल धब्बे जैसी दावल वाला
चकत्ता।
समेट लेना चाहता हूँ इसी के बीच सब
यही वह कविता है अनलिखी।
धूप से चौंधियाती हैं आँखें
घसीट कर रखता हूँ पैर,
सौवीं बार व्याकरण भूलने का अहसास होता है।
फिसलकर, हाँफ कर, वह ऊपर आना चाहती है।
क्या, अब भी क्या ?
चमकती हुई हरी पत्तियाँ
अब भी उठा लेना चाहती हैं वह बोझ।
लेकिन दिनचर्या का बोझ अब हल्का
                    नहीं है उतना।
न ही पत्र की पंक्तियाँ उतनी आसान हैं।
न ही मित्र के साथ बातचीत।
न ही बता पाना।
देखता हुआ अपने चलने को एक अचंभे के साथ—
मन ही मन कहता हूँ—

दिनचर्या—2

जब उन्हें पलट कर देखने का समय नहीं,
उनके जैसा कुछ दिख जाने पर।
उड़ती है एक तितली अनार के पेड़ पर
प्रसन्न फूलों के पास

उड़ता है वायुयान ऊपर।
इन दोनों के बीच में कुछ और ही अब,
दफ्तर जाने की जल्दी में कुछ घिसटता हुआ या
बताता कि मेरा मन बहुत पहले छोड़े हुए गाँव
के घर का एक खंडहर है।
ठीक, मुझे याद है वह बेरी का पेड़।
नौ बज कर पैंतालीस।

वर्षा के बाद पथरीले टीलों पर घास और काई,
और पेड़ों का इतना हरा रंग कि काला लगे।
शुरू हो गया है शहर का शोर।
और इसके बीच जैसे बड़े इत्मीनान
से चली आती है वह मृत्यु
कितने दिनों पहले घटी।
सब कुछ में मेरे पास चले आने का असमंजस भरा
अपनाव है।
मैं ही बरजता हूँ 'नहीं'।
तुम सब वहाँ चले आ रहे हो ?
किधर गये ?
गर्दन घुमाकर देखते ही कुछ भी
नहीं रहेगा मेरे पास।

कविता मे

क्या खोजना चाहता हूँ, धूप म कविता म,
वही जो दिखता है और गुम हो जाता है,
गुजर जाता है—
भागती रेल म चाय पीते देखते,
मुडेरो पर शाम की अतिम धूप, टुकडा म,
काई दीवार पर। न बीतते समय म गिरती चीजें
एक-एक कर। रात वह रात वह खोलूं या न खोलू
रहने दू कविता म सिफ रात शब्द म।
वही जहां बचत नही हैं शब्द, वही स देखूं और
याद करूँ। भीड और इतने लोगो की अलग अलग कहानिया मे
ढग एक जीने का मेरा है—मेरा भी—
जहाँ आ कर रुकती नही है बस, वही खडा है एक लडका बचपन म।
यह भी नही। कुहरे म कुछ बत्तियाँ और काली सडकें एक सी।
और एक धडकन म हजार धडकनें।
वह सब जो गुथा है एक दूसरे से—एक दूसरे म लगाता आग
की तरह चाह। और वह भी जहाँ वह दुपहर के समुद्र म

छोड दी जाती है एक नाव की तरह
किनार लग न लग नाम तक।

एक दूसरे को काटत हुए पत्र यही कि जवाब के पहले ही
लिख दिए जायें दोना और म पत्र।
यही कि सोचता रह लगातार शहर अपनी शर्तों म,
और वह रात को लौटता हुआ, घुस जाय एक छोटी सी
चाय की दुकान म,
वहाँ स निकले। और पहाड़िया के पास क अँधेर म
करन लग गिनती अपन धन की—पैसा की नही।
यही कि वह देखता रह छपत हुए पेड पत्ता की परछाइ
दीवार पर। और सुनता रह पिछल वर्षों की धडकनें मिली जुली।
दूरिया मे तना हुआ, घिरा हुआ अकेले कमरे की माँग म,
जोडता हुआ अपन लिए इस चीज को उस चीज म जिस
जान नही सकेगा
कभी कोइ पूरी तरह। कविता म खुलेगा क्या
सुनती है देह जिस किन्ना की रात। कविता म।

। कविताओ का दद
म, इस शाम,
।।, गुजर गयी कविताओ की तरह या—

था शहर के बीचोबीच मैं
के अदाज म।
५९७७ ।। हुई धूल रचती थी
ो भो, मोहक सस्मरणो म
को, डरावने सस्मरणा म।
ो है या सिफ ठहरी मालूम होती है
। के ऊपर ऊपर।

इस उडती धूल और बहुत कुछ निलिप्त छता के नीचे
न शहर मे—उस कोई मतलब नही कि तुम खडे हो
या एक छोर पर पुराने खडहरा के पास।

बस चला जाता था, पुराने खडहरो के पास
। था घास के तिनको के साथ बहुत कुछ

यही कि तुरन्ते छोड गये हैं इस शहर म बिना कुछ बताये हुए—
कुछ उनकी धुंधली स्मृतियाँ, कुछ उनका व्यापार।
खडहरा स कितनी दूर मालूम पडता था शहर।
धीर धीर घट गया बहुत कुछ, कई असफलताएँ,
कुछ मृत्युएँ

प्रेम, विवाह, धीरे धीर शहर का रक्त
दौडन लगा मरी भी धमनियों म
धीर धीर जाना कि खडहरा म शहर की कालानिक दूरी
ज्यादा नहा है—और भी कई जात हैं,
पिकनिक मनान, कविता म कुछ सोचन नहीं,
नहा करत दन कुछ ऐसा दसन का
जिस देख लिया कवि न।

लेकिन अब भी वे यात्राएँ लौट आती है, टुकडा म,
अब भी कमर म लेट हुए दिखती है—
35 या 40 पस की बस टिकटा वाली शाम,
शहर के बाहर स शहर म लौटती हुई।
वही ऊपर ऊपर उडती धूल,
वही घूम फिर कर लौट आत दृश्य जिनम जुडता गया है बहुत कुछ

हाँ, उठती नही हैं कविताएँ उफनती हुई।
उठता है दद छाती म, पीठ म, उन कविताओ का,
जि हे लिख नही सका मैं।

परछाईं छपती है

परछाइं छपती है दीवार पर
पत्तियों की।
लिखनी नहीं है कविता महकते पेड़ की।
रखी हुई हैं चार कुर्सियाँ एक दूसरी के पास
इस तरह कि
काफी कुछ है करने को ईर्ष्या।
उस ढलवाँ सड़क के ऊपर अब चाँद है।
अनलिखी चिठ्ठियाँ और अनलिखी कविता कहानियाँ
झाँकती हैं ठीक इसी वक्त
रोज की तरह
बिस्तर पर निढाल होने से पहले सुननी ही होगी
उनकी आहट, दूर करते करते
वापस लौटाते हुए।
बाँधकर फेंक दी गयी नियमावली नाड़ी के पास दिन भर की

उसी शहर मे

उसी शहर म । जब जा चुकी है दफ्तरा के लिए
बसें और ट्राम
उसी शहर म—
कितन वर्षों के बाद उसी दुकान के शीशे म देखत हुए
अपना चेहरा
लगन लगता है जब कि जानता हूँ लेकिन उन्ह शक्ल
दने स पहले चल पडता हूँ ।
उस शात गली की ओर मुडत हुए
कहता हूँ
हाँ अब याद करो । नही, देखो नही, इस काई लगी दीवार को ।
न कनेर का वह पड, जिसकी पत्तियो पर धूल ह ।
गुजर जाती है हर दुपहर और शाम, गिनने को बच
रहती हैं
बार बार वही चीजें देखन को वह दुकान—

उठा लेनी होगी फिर।
कितने सौ कदमों के फासले पर दो दुनियाएँ।

दूर जाती हुई बस की परघराहट की अंतिम गूँज
जहाँ खत्म हो जाएगी
वहीं पर उभर आयगी रात—कुछ क्षण भर लिए।
आमने सामने खड़े होने की बजाय
मैं किधर देखूँगा ?
लेन उस वक्त जब इच्छा होगी कि
फिर से जी सकूँ वह रात।
चिंता न हो खत्म होते पैसों की
पर होगी।
घुलने लगेगा सोचा हुआ हर कविता बिंब।
रात होगी फैलती,
रात जैसी कि अब वह है।

उसी शहर मे

उसी शहर म । जब जा चुकी है दफ्तरा के लिए
बसें और ट्राम
उसी शहर म—
कितन वर्षों के बाद उसी दुकान के शीश म देखत हुए
अपना चेहरा
लगन लगता है जब कि जानता हूँ लेकिन उन्ह शक्ल
दने स पहले चल पडता हूँ ।
उस शात गली की ओर मुडते हुए
कहता हूँ
हाँ अब याद करो । नही, दखो नही, इस काई लगी दीवार को ।
न कनर का वह पड, जिसकी पत्तिया पर धूल हैं ।
गुजर जाती है हर दुपहर और शाम, गिनने को बच
रहती हैं
बार बार वही चीजें, दखन को वह दुकान—

बोझ कितना ही भारी हो, आँखें खुलती न हों चाहे उस
अनलिख पत्र में।
भय हो कि कोई टाक दगा आज नहीं तो साल भर बाद
क्या कर रहे थे तब   जहाँ पहुँचना चाहिए
वहाँ न पहुँच कर।
अभी थोडी ही देर में खुल जायगा मानो कोई रहस्य,
पिछले दिनों को, वर्षों को झूठा करता हुआ।
लेकिन रोजमर्रा का दृश्य है और मैं हूँ थकता हुआ
न भूलता अपनी अकेली शाम को। उसी शहर में।
एक साथ दौड पडता अपने अधूरेपन की ओर—
दूसरे शहर के कमरे की याद करता हुआ,
जहाँ भर जाएगी धूल इस बीच में।
और जहाँ जाकर बैठेगा निढाल अपनी कुर्सी पर
ज्यों का त्यों।

उसे देखते।
झूठा न पडने देने की मार सहते हुए।
कर न पाता इकट्ठा सब कुछ कविता में।
उसी शहर में।

मसलन

भर भर भरते हुए पानी की स्मृति
टकराती है गुजरते हुए ट्रक से,
फिसलती हुई आखें लिपट जाती है बरामदो म
लटकी हुई बेलो से,
कई चमकती हुई चीजो की पालिश
रचती है एक निजी अधकार—
शरीर जागता है धीरे धीरे बहुत कुछ
अदृश्य रूप म बढते हुए पौधे की तरह।

क्या घटता है घरो के भीतर।
किसी रसोईघर का हिस्सा,
दिखा।
एक यात्रा के बाद बठे हुए वे चार या पाँच,
बातें करते है, इस तरह

कि न दीखत है, न महसूस होत हैं
एक दूसरे को पूरी तरह ।

बूद बूद कर निचुडना या सूखना
या छा लेना बाढ़ के पानी की तरह
सब कुछ को ।

वह हरा पड हवा म हिलता हुआ जोर जोर स ।
खडा रहता है तटस्थ, नही, तटस्थ भी नही,
जो भी चाहे जोड ल अपने को
और साथ ले जाय एक हरा रहने वाला अनुभव ।
और सब कुछ आ जाता है उस सोच म,
वही बात नही आती ।
नही आता उस दृश्य का पूरापन
मसलन
एक बरामदा, रात—

घडी की अनवरत टिक टिक से अलग,
घटता है क्या, सोच के बाहर ।

एक कविता से दूमरी के बीच

मेरी एक कविता स दूसरी कविता क बीच
यह है— वह सब जो उन म समाया नहीं।

किसी ठहरी शाम म, किमी एकात मे
बहुत दिनो बाद किसी मित्र के पत्र म
या सपन म वर्षा पहले रहे हुए किसी
घर को देखने पर,
या बँधी हुई दिनचया के बीच
मिलती है उसकी झलक—

कभी कर जाती सुन
कभी छोड जाती किसी पड स
देर तक देखने को लगातार उस,
मानो उस सवको पा लेने को
कोई भी तरीका आजमाने के लिए
उकसाती हुई।

कि न दीखत हैं, न महसूस होत हैं
एक दूसर को पूरी तरह।

बूद बूद कर निचुडना या सूखना
या छा लेना बाढ के पानी की तरह
सब कुछ को।

वह हरा पेड हवा म हिलता हुआ जोर जोर स।
खडा रहता है तटस्थ, नही, तटस्थ भी नही,
जो भी चाहे जोड ले अपने को,
और साथ ले जाय एक हरा रहन वाला अनुभव।
और सब कुछ आ जाता है उस सोच म,
वही बात नही आती।
नही आता उस दृश्य का पूरापन
मसलन
एक बरामदा, रात—

घडी की अनवरत टिक टिक से अलग,
घटता है क्या, सोच के बाहर।

हरे याद रहते होंगे ? रात तक ,
हर में भूल जाने के लिए—

क शाम में मन में रहा उनका
आ गया इतवारों का अड्डा
, इतवार, एक कच्चा नाटक
ौर दूर नहीं जा सका लेकिन मैं।
अरे अरे कहाँ होगा वह इतवार वाला !)
गया कनाट प्लेस
उन उतार दिया मुझे ठीक जगह
ा मैं और वह जान रहे थे
वह क्या सोच रहा है, मैं क्या ?
। मैंने उतारा था—
ड़ी देर के लिए। उसने हर बार मैं माना
चमक।

। ६५

सवारी

एक सवारी कनाट प्लस', 'कनाट प्लस एक सवारी'
वठो बैठो जी—गुजरती हैं इमारतें लोग—
(एक दिन मैं नही होऊँगा) अभी तो चलो
कनाट प्लेस वठो बैठो कहाँ तक जाओग ?
रोक लिया फोर सीटर वाले न पैदल जाती
सवारियो को एक औरत, एक मद, एक बच्चा—
पैसे नही लिये उनमे उतर गय वे यह कहत
'खुश रहो, खुश रहो'। क्या वह उन्ह पहचानता था ?
या फिर खाली जा रहा था—इसीलिए।
दो सीटें खाली।
(भर गयी वे भी बाद म)
वह पैदल जात लोगो म
ढूढ़ता रहता है अपनी सवारी।

घर जाकर वह बच्चो को कौन स किस्से
सुनाता होगा ? शाम तक कौन म

चेहरे याद रहते होंग ? रात तक ?
फिर स भूल जाने के लिए—

एक क्षण मे मन म कही अटका
हुआ दीख गया इक्का का अड्डा
घोडे, इक्के, एक कच्ची सडक
और दूर नही जा सका लेकिन मैं ।
(अरे अरे कहाँ होगा वह इक्क वाला !)
आ गया कनाट प्लेस
उसने उतार दिया मुझे ठीक जगह
क्या मैं और वह जान रह थे
कि वह क्या सोच रहा है, मैं क्या ?
शायद । मैं उसकी सवारी था—
थोडी दर के लिए । उसने मरे बार म सोचा
मैंन उसके ।

सवारी

'एक सवारी कनाट प्लस', 'कनाट प्लस एक सवारी'
बैठो बैठो जी—गुजरती हैं इमारतें लोग—
(एक दिन मैं नहीं होऊँगा) अभी तो चलो
कनाट प्लस बैठो बैठो कहाँ तक जाओगे?
रोक लिया फोर सीटर वाले ने पहले जाती
सवारियों को एक औरत, एक मर्द, एक बच्चा—
पैसे नहीं लिए उनसे उतर गये वे यह कहते
'खुश रहो खुश रहो'। क्या वह उन्हें पहचानता था?
या फिर खाली जा रहा था—इसीलिए।
दो सीटें खाना।
(भर गयीं वे भी बाद में)
वह पैदल जाते लोगों में
ढूँढ़ता रहता है अपनी सवारी।

घर जाकर वह बच्चों को कौन से किस्से
सुनाता होगा? शाम तक कौन से

चेहरे याद रहते होंगे? रात तक?
फिर से भूल जाने के लिए—

एक क्षण में मन में कहीं अटका
हुआ दीख गया इक्का का अड्डा
घोड़े, इक्के एक कच्ची सड़क
और दूर नहीं जा सका लेकिन मैं।
(अरे अरे कहाँ होगा वह इक्के वाला!)
आ गया कनाट प्लेस
उसने उतार दिया मुझे ठीक जगह
क्या मैं और वह जान रहे थे
कि वह क्या सोच रहा है, मैं क्या?
शायद। मैं उसकी सवारी था—
थोड़ी देर के लिए। उसने मेरे बारे में सोचा
मैंने उसके।

सुबह

मैं यहा और किसी को नही पहचानता
सिवाय सूरज के, जिसका इस
तरह उगना कई दिना बाद (या पहली बार)
देखा।

सिवाय उस कौवे क जो अभी-अभी
उस पेड स अचानक उडा।

सिवाय चिडियो की आवाज के
जिनका हूबहू सुर औरा की तरह
मैं भी न बता सकूगा।

मैं यहाँ और किसी को नही पहचानता
सिवाय उन दीवारा के झरत रग के।
मैं यहाँ और किसी को नहा पहचानता
सिवाय उस पेड के
जो बहुत दिना स मेरी ही तरह
।

। नहा पहचानता
जो अभी अभी

वरसात

एक दिन अचानक चौंककर, दुपहर
की नीद के बाद हम देखत हैं
बदल दिया ह बहुत कुछ वरमात ने।
हम देखत हैं धूप, छाया के माथ
सामने की खाली पडी जगह की घास,
दूर-पास के पेड पौधे, घने काले होने
की हद तक हरे।
रह रह कर चलती हवा म हम
देखते है खिडकी स
सहसा तनकर सीधे, आखें फलात
जैस किसी नय अनुभव की ओर
लगाय, कान भी। सुनत हुए बहुत कुछ—
मेज पर रखी चाय के साथ
बठे चुपचाप, सोचत क्या तुमने भी
वही सुना देखा
जो मैंने।

सुबह

मैं यहाँ और किसी को नही पहचानता
सिवाय सूरज के, जिसका इस
तरह उगना कई दिनो बाद (या पहली बार)
देखा।

सिवाय उस कौवे के जो अभी अभी
उस पेड से अचानक उडा।

सिवाय चिडिया की आवाज के
जिनका हूबहू सुर औरो की तरह
मैं भी न बता सकूगा।

मैं यहाँ और किसी को नही पहचानता
सिवाय उन दीवारो के भरत रग के।
मैं यहाँ और किसी का नहा पहचानता
सिवाय उस पेड के
जो बहुत दिनो से मेरी ही तरह
है।

मैं यहाँ और किसी को नही पहचानता
सिवाय उस आदमी के जो अभी अभी
हाथ म झोला लिये
मेरी खिडकी के सामने से
गुजर गया है।

पिंजडा

इस पिंजडे को देख कर
याद आता है एक पिंजडा ।
अब कितना भी याद करूँ
नाम याद नही आएँगे,
बचपन मे पाली हुई
चिडिया के ।
चमकते पत्तो पर कुछ
लिखा नही है । अब ।
अँगुली रख कर बता नही सकूगा ।
मैं कुछ कहना चाहता हूँ
बहुत दिनो स ।
किस तरह भूली हुइ थी
कहन की इच्छा !

घर

घर की दीवारें सब सुनती है
कुछ कहती नही
(दीवारा के भी कान होत हैं)
वे देखती हैं हमारा आना
और जाना और फिर आना
व कुछ पूछती नही
(व सब जानती है)
बच्चो के खेल मे शरीक होती है वे
महसूस करती हैं दरवाजा का बद होना
खिडकिया का खुलना
आंधी पानी
व जानती है हमारा रात का जागना
सुस्ताना सांस लना थकना
इतजार करना चुप रहना
उन्हे सब दिखता है
जस शीशे को शीशा पर
नही हैं व।

वे सब जानती हैं कौन आता था
अब नहीं आता कई दिनों से।
घर की दीवारें समा लेती हैं
सब कुछ अपने भीतर
वे जानती हैं ठीक कब हम
याद करते हैं समुद्र को
घने जंगल को
जब हम याद करते हैं
एक और घर की दीवारों को
(बचपन के घर की दीवारों को
जानती हैं और भी अच्छी तरह,
जिनसे कभी मिली नहीं)
फड़फड़ाती हैं वे भी कबूतर
या गौरैया जब भूल जाती हैं
खिड़की का होना
थोड़ी देर के लिए
वे भी करती हैं 'हुस हुस
हमारे साथ
वे देखती हैं सारी परछाइयां
मिटना उनका
जानती हैं हवा का रुक जाना।
चिंता आशंका।
पत्थर होना आदमी का।
जानती हैं वे। अँधेरा।
जलना बत्ती का।
बंद रहना कई दिनों तक
घर का।
दरवाजे पर ठक ठक।
सब जानती हैं वे बातें
हमारे मन की।
रहती हैं हमारे साथ,
जहां कहीं जाते हैं हम
अंत तक।

रात

यह कौन-सी की रात है बचपन
की अंतिम रात के बाद
जाग पडा हूँ मैं अचानक वह सब
देख सकता हूँ अँधेरे म, जिस दिन
होते ही पहचान लूगा मैं
(पर बहुत कुछ है जिसे दख नही
सकता हू)

पत्नी बच्चे नहीं है इन दिना साथ।
उनकी चीजें है, उनके खिलौने अपनी-
अपनी जगह।

रात है यह उठकर बैठा हूँ मैं।
किसी स्वप्न म नही, याद म देखता हूँ
पुरखो का घर चेहरे वे जो कभी
नही दखे मेरे बच्चा ने। रात है यह।
रात म मैं सचमुच क्या पहचानता हूँ ?
अँधेरे म नीलापन है आकाश का
एक जाता हुआ वायुयान सरसराता हुआ पखा।
दोस्त है आशकाएँ मेरी दुविधाएँ है
बचपन की पगली है बढी हुई पेड
के नीचे जाती हुई गली म
पेड पौधे है चिडिया जहा आज तक
होती ही आयी है घास है बरसात
भरा हुआ पानी है। मढक साप बिच्छू
सँहुड

मैं एक रील हूँ रील कभी न खत्म होन
वाली रील कुछ न कुछ दिखता ही है उनम।
देखता हूँ करवटें बदलता अपने न
देख सकने को भी। रात है
जीवन की कौन सी यह रात।

दोपहर

मैंने बद किया दरवाजा।
मुडा।
और पेडो की एक कतार ने मुझे देखा
चलते हुए।
दुख क्या है।
(कोई नहीं जानता!)

मैं अपने भीतर कुछ सुन रहा हूँ
बजता हुआ।
(यह नही, शब्द चाहिए, शब्द)
खेल रहे हैं कुछ बच्चे।
और कही से बहकर आया पानी
ठहर गया है।
जिसमे तरती है छायाएँ।
(किन किन चीजो की)
बीत नही गया होता बचपन
तो बता सकता था
गिनकर

दोस्त आगे निकल गये है
बातें करते हुए।
मैं चल रहा हूँ तेज
पहुँचने को उनके बीच

पार्क में पतझड़

फूल जाती है सांस एकान्त तक पहुँचते पहुँचते
चलती रहती है वहां धौंकनी की तरह—
सरसराती हुई हवा घास की फुनगियों पर
कुछ कागज के टुकड़े, एकाध सिगरेट के—
क्या याद आया। यहां पहुँच कर क्या कहना चाहता था—
पिछले जीवन का (जन्म का नहीं)
हिसाब किताब।
या कि सुस्ताना चाहता था बस।
इस गोल घेरे में—जिसे घेर कर दौड़ रही हैं कारें
और शहर की बहुत सी दुकानें कुछ न कुछ बेच रही हैं,
घेरा में रह रह हैं कई कई जन्मों से लोग।
बैठा है कुछ चिड़िया, सूखती सी टहनियों पर।
गले के नीचे के धब्बों को उठाती गिराती है सांस,
बोलते बोलते थक गयी है वे
आंखें जो न पतझड़ के लिए तैयार थीं,
न वसंत के लिए,
कुछ न कुछ देखते रहने की अभ्यस्त हो गयी हैं।
लेकिन पेड़ों और घास के रंग की,
पिछले दिनों की,
कई कई परतें भूल कर झरझर मिल गयी हैं, इस तरह
मिट्टी में, हवा में
कि उन्हें पाने के लिए
कितना जरूरी है
आंखों का
यह पतझड़।

लडका

सीढ़ियाँ चढ़कर आता है वह लडका
धम धम करता दरवाजा।
जगा देता हम नीद स—
अपनी चमकती आँखो के साथ,
कुछ पूछता बताता
फिर खडा हो जाता चुपचाप दीवार
के पास,
देखता हम।

'हम गये थे बहुत दूर,
घुम कर आये बहुत दूर सचमुच'
देखता खिलौनो को, धूप के रग को
कितना अच्छा है यह रग'
आँख खोलकर हम कुछ देखें, अच्छी तरह
इसमे पहले ही चला जाता है
बरामदे मे, पुकारता किसी को,
वह लडका।